डॉ० सुरजीत भल्ला, अध्यक्ष, ऑकसिस इन्वेस्टमेन्टस

मुझे प्रमुख रूप से चार बातें कहनी हैं। किन्तु, पहली अति महत्वपूर्ण है। मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी मुझे बताऐ कि पिछले 65 वर्षों से भारतीय कृषि में किसी प्रकार का सुधार क्यों नहीं हुआ है ? वास्तव में इसमें कई विकृतियां हैं अर्थात् इस क्षेत्र की स्थिति बद से बद्तर हुई है। वे कौन से मुद्दे हैं जिनके लिऐ किसान और किसानों की संस्थाऐं जोर लगाती आ रही हैं ? क्या वे कोई मूल परिवर्तन करने पर बल देते हैं, जो कि ऐसा है जिस पर विचार नहीं हो सकता या अधिकतम देशों में उसकी आवश्यकता नहीं है। वर्ष 1991 में हमने आर्थिक सुधार किऐ जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई और उससे भारतीय अर्थव्यवस्था को भी लाभ मिला, किंतु कृषि क्षेत्र में ऐसा एक भी सुधार देखने को नहीं मिलता। हम आज भी कृषि क्षेत्र में वहीं हैं और वैसे ही कर रहे हैं जैसे पहले थे और हर बार पहले की ही तरह होता आ रहा है।

मैं आपको अतीत की एक घटना सुनाना चाहता हूँ। जब चीन ने वर्ष 1978 में आर्थिक सुधार आरंभ किऐ तो उनका प्रथम क्षेत्र कृषि सुधार ही था। हमने भी इस क्षेत्र को छुआ, किंतु पहले से भी बद्तर बना दिया जबकि अधिकतम देशों में कृषि में सुधार करते हुऐ सफलता पाई। कृषि क्षेत्र में अधिकतम लोग लगे हुऐ हैं और इसी क्षेत्र में सबसे अधिक निर्धन लोग भी हैं। तो बताऐं सुधारों की अधिकतम किस क्षेत्र में आवश्यकता है ? ऐसा क्या है कि अन्य क्षेत्रों की तुलना में कृषि में प्रगति नहीं हो पाई है ?

यदि हम अपने 65 वर्षों की स्वतंत्रता अवधि को 2 भागों में बांटें, पहले 32 वर्ष और अगले 32 वर्ष, हम पाऐंगे की कृषि वृद्धि दर स्थिर ही है, कह सकते हैं कि लगभग 3 प्रतिशत वार्षिक। वर्षा आधारित होने के कारण हमें इस क्षेत्र में अधिकतम उतार–चढ़ाव देखने को मिलता है, किंतु स्पष्ट होता है कि कृषि उत्पादन में इसी कारण कुछ वृद्धि हुई थी, किंतु कुछ और नहीं किया गया। इस प्रकार, 1970 के दशक के मध्य से पहले हमने सिंचाई क्षेत्र तो बढ़ाया जिसे अर्थशास्त्री उपलब्धि के रूप में देखते हैं और हम 3 प्रतिशत वार्षिक प्रगति कर पाऐ। इसके पश्चात हमने कृषि पर अत्यधिक जोर दिया, किंतु अभी तक केवल 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हो रही है। अतः क्या हो रहा है ?

जैसा यहां ठीक कहा गया है कि 'कृषि मंत्री' को तो प्रायः मानसूनी ही माना जाता है। यदि हम 1960 में होते तो भी हम यही बात कहते की भारतीय कृषि वर्षा पर आधारित है। क्या दुनिया में कोई ऐसा देश है जो 60 वर्षों के बाद भी उसी बहाने को लेकर बचाव करता है ? ऐसा नहीं कहा जा सकता वर्षा कम होने से कृषि पर प्रभाव नहीं पढ़ता किंतु इन सब वर्षों में हमने इसके क्या उपाय किऐ ताकि कृषि क्षेत्र केवल वर्षा पर ही निर्भर न रहे। यह मेरा पहला मुद्दा था।

अब, हम कृषि को कैसे नियंत्रण करते हैं ? दूसरा, कृषि क्षेत्र को किस प्रकार नियंत्रण नहीं किया जाता ? क्या कृषि क्षेत्र का कोई ऐसा पहलू है जिस पर हम नियंत्रण नहीं रखते ? हम कृषि से संबंधित उपकरणों, उर्वरक, जल और बिजली तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य नियंत्रण रखते हैं। इसके पश्चात् पंजाब में खरीद मूल्य पद्धति अच्छी है, किंतु इससे किनको लाभ हो रहा है। निसंदेह किसानों को तो नहीं क्योंकि किसानों को मिलने वाले मूल्य तथा उपभोक्ताओं द्वारा देने वाले मूल्यों में काफी अंतर है। इसके पश्चात हमारा ऐपीएमसी अधिनियम है और हम निर्यात पर भी नियंत्रण रखते हैं। सरकार उसी समय निर्यात पर प्रतिबंध लगा देती है जब सरकार ऐसा करना चाहती है। इसे तो बुद्धिमानी का कार्य नहीं कहा जाऐगा – नीतियां किसके लिऐ हैं – यह सकारात्मक हो सकता है। इन नीतियों को इतने वर्षों से इस सीमा तक कायम क्यों रखा जा रहा है ?

अब, हम वर्ष 1960 में तो गरीबी हटाओ पर विचार विमर्श करते ही थे और अब भी वर्ष 2014 में वही दोहरा रहे हैं। गरीबी हटाने के लिऐ हमें कृषि उत्पादन, इसके वितरण, मूल्य और इसके पुनःवितरण पर नियंत्रण करना होगा। हमारा लक्ष्य उपभोक्ताओं, विशेषकर गरीबों को कम मूल्य पर वस्तुऐं उपलब्ध कराना है। सरकार द्वारा खाद्य वितरण पर खर्चे गऐ प्रत्येक रू. 100/– में से केवल गरीब तक रू. 15/– ही पहुंचते हैं और वर्ष 2011–12 में इस खाते में रू. 73,000/– करोड़ खर्चे गऐ थे। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्था के आंकड़ों के अनुसार भारत सरकार द्वारा कुल खाद्य उत्पादन का खरीद और भंडारण में से तथा अनाज के लिऐ कुल राशि जो दुकानों को दी जाती है, वास्तव में अनाज और राशि की केवल आधी मात्रा राशन की दुकानों तक पहुंचती है। बाकी मात्रा कहां जाती है ? इसके लिऐ सड़कों पर प्रर्दशन क्यों नहीं होते, किसान और नेतागण इसके बारे में बात क्यों नहीं करते ? इस प्रकार का केवल एक ही नमूना नहीं है। वास्तव में वर्ष दर वर्ष यही होता आ रहा है। इसमें केवल वर्ष 2011–12 में मामूली सुधार हुआ था।

यदि हम पिछले दशकों में राष्ट्रीय नमूना संस्था के आंकडों को देखें तो दिखेगा कि भारत सरकार द्वारा जारी किऐ गऐ अनाज का केवल 50 प्रतिशत भाग ही राशन की दुकानों तक पहुंचा। यह सरकारी आंकडा है। सरकार वही आंकडें प्रर्दिशत कर सकती है जो उसे उपयुक्त लगे, किंतु हम कम से कम यह तो पूछ ही सकते हैं कि क्या आंकडों से वास्तिविक स्थिति में कुछ फर्क पड़ता है ? इसका उत्तर किसी के पास नहीं है और यह गरीबों की सहायता के लिऐ होता है। अतः माइंडसेट लोग ही नीतियां बना रहे हैं। यदि आप की संस्था का उद्देश्य कृषि और किसानों की सहायता करना है तो आप क्यों नहीं ऐपीएमसी अधिनियम पर प्रतिबंध लगाते और खरीद नियंत्रण मूल्य पर भी प्रतिबंध क्यों नहीं लगाते ? सरकार क्यों नहीं कृषि क्षेत्र को मूल्यों से मुक्त कर देती। कृषि क्षेत्र में काफी बड़े–बड़े लोग हैं, किंतु सरकार का एकाधिकार है और हम सब इसे गरीबों के नाम पर सहायता देना कहते हैं। इस एकाधिकार के लिऐ जिम्मेदार भारत सरकार ही है।

कृषि क्षेत्र पर निर्भर रहने वाले लोगों की संख्या कम हो रही है। अभी भी ग्रामीण भारत की 40 प्रतिशत से अधिक आबादी कृषि क्षेत्र से ही अपनी 50 प्रतिशत से अधिक आय अर्जित करती है। अभी भी यह बहुत ऊँची है। हमें किसानों को मिलने वाले मूल्य और उपभोक्ता द्वारा दिऐ जाने वाले मूल्य के अंतर पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उत्पादन और वितरण दोनों क्षेत्रों में ही अधिकतम लाभ बिचौलिऐ कमा रहे हैं, न तो किसान और न ही उपभोक्ता को राहत मिलती है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में भी बिचौलिऐ ही लाभ उठाते हैं। 50 प्रतिशत भाग तो चोरी होता है। हमें भारत में प्रचलित रूढ़िवादिता को हटाना होगा, क्योंकि हम सब एक प्रश्न पूछ सकते हैं कि विश्व के 204 देशों में से हम ही क्यों वितरण प्रणाली पर चल रहे हैं।

अमेरिका और श्रीलंका जैसे कई देश हैं जहां पर अनाज स्टेम्प कार्यक्रम हैं। वहां पर नकद ट्रांस्फर पद्धति है जिससे गरीबों को आय का लाभ दिया जाता है। आपको लाभ निर्धनों तक पहुंचाना है। समाज की यह प्रमुख जिम्मेवारी होती है। इसी कारण कर व्यवस्था लागू की जाती है ताकि आधारभूत सुविधाओं, सार्वजनिक वस्तुओं या पैसा ट्रांसफर करके पैसे का पुनःवितरण किया जा सके। किंतु, ऐसे कितने देश हैं जहां पर इतनी लापरवाही से पैसा ट्रांसफर किया जाता है, जैसा हम भारत में करते हैं। इस विषय पर संसद में एक अधिनियम बना है जिसके लिऐ हम सब तालियां बजाते हैं कि इससे हम सबको लाभ होगा। क्या आप मानते हैं कि वास्तव में लोग खुश हैं या नही कि उन्हें यह लाभ मिलेगा या नहीं या वे उसके पात्र हैं ?

उदाहरण के लिऐ मनरेगा, इस योजना के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को एक वर्ष में 100 दिन का रोजगार देने का प्रावधान है। यह वही कार्यक्रम है जो भारत में वर्ष 1973 में था और तब इसे 'काम के लिऐ अनाज' कार्यक्रम कहते थे जो महाराष्ट्र में आरंभ हुआ था। इस प्रकार सरकार ने इस विषय पर क्या कहा ? सरकार कहती है इस कार्यक्रम का उद्देश्य लोगों को 100 दिन का रोजगार देने का कानूनी अधिकार दिया गया है। क्या कोई बता सकता है कि 100 दिन का रोजगार दिया जा रहा है ? गारंटी से कह सकता हूँ, नहीं। क्या कोई मुझे बता सकता है कि हम में से कितने लोग सरकार के पास गऐ कि हमें 100 दिन का रोजगार नहीं मिला जो कि हमारी पात्रता थी ? इन मामलों को क्यों नहीं उठाया जाता और इन पर विशेष ध्यान क्यों नहीं दिया जाता ? हमारा वह समाज कहां है जो कह सके कि हम सरकार की खबर लेंगे और सुनिश्चित करेंगे कि लोगों तक पैसा पहुंचे।

मनरेगा कार्यक्रम के बारे में काफी दिलचस्प सूचना है। जब 2005 में मनरेगा सरकार ने आरंभ की तो 'काम के लिऐ अनाज' विषय पर एक प्रमुख चैंपियन ने एक कड़वा लेख टाईम्स ऑफ इंडिया अखबार में प्रकाशित किया था कि भारत में वर्तमान कार्यक्रम, जो वर्ष 1973 से चल रहा था, उसे 'काम के लिऐ लूट' कार्यक्रम कहना चाहिऐ। इस प्रकार राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् के इस सदस्य ने कैसे निर्णय लिया कि ऐसे कार्य इस प्रकार करने चाहिऐ ? भारत के सभी जिलों में इस कार्यक्रम को लागू करके हम समस्या का समाधान करेंगे। हम इसके लिऐ एक कानून बनाऐंगे और भारत के सभी गरीबों को रोजगार देंगे। इस प्रकार हम भ्रष्टाचार की समस्या का समाधान कर सकते हैं।

जैसा मैंने पहले कहा कि पिछले 65 वर्षों में हमारे कृषि उत्पादन में एक इंच की भी वृद्धि नहीं हुई है, केवल गुजरात राज्य को छोड़ दिया जाऐ क्योंकि वहां पिछले एक दशक से कृषि उत्पादन तेजी से बढ़ा है। अतः यह एक या दो वर्षों की दुविधा नहीं है कि कहां पर वर्षा हुई और कहां पर नहीं हुई, कहना चाहिऐ कि पिछले 10–12 वर्षों में पूरे भारत में यहीं तेजी से कृषि उत्पादन बढ़ा है।

आइऐ हम वास्तविक्ताओं और तथ्यों को स्वयं ही जांचे कि ऐसा क्यों हो रहा है कि आज 2014 में भी भारत में उसी बात पर वाद–विवाद/विचार विमर्श हो रहा है जिस पर वर्ष 1960 में हो रहा था।

<u>डॉ० अभिजित सेन, पूर्व सदस्य, योजना आयोग, और सदस्य, 14वां वित्त आयोग</u>

हम यहां बजट के बारे में बात करने के लिऐ उपस्थित हैं, किंतु कृषि क्षेत्र के बारे में ही बात करेंगे, हम अन्य विषयों पर भी वार्तालाप करेंगे लेकिन उन सबको मिलाया नहीं जा सकता। हम पिछले 60 वर्षों से कृषि क्षेत्र पर बातचीत करते हैं, किंतु वास्तव में कुछ भी बदला नहीं है। कुछ क्षेत्रों में थोड़ा सा परिवर्तन आया है जिनके बारे में हम विचार कर सकते हैं। मुझे बजट से ऐसा महसूस हुआ है कि सरकार के पास अधिक समय नहीं था। इस कारण अधिकतम बजट की तरह इसने भी अंतरिम बजट पेश किया और अधिकतम क्षेत्रों में वही आंकडे रखे तथा कुछ क्षेत्रों में आंकडों में परिवर्तन किया। इन आंकडों से माना जा सकता है कि कुछ निदेश प्रभावकारी हो सकते हैं लेकिन अधिकतम क्षेत्रों में शब्दों की कारीगरी दर्शाई गई है न कि संख्या। मोटे तौर पर इस बजट में कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि सरकार के पास अंतरिम और प्रमुख बजट प्रस्तुत करने के बीच अधिक समय नहीं था।

फिर ऐसे कौन से विषय हैं जिनमें अंतरिम और अंतिम बजट के बीच कुछ परिवर्तन हुऐ हैं ? मूल्य स्थिरता का संदर्भ है जिसमें एक नई सिंचाई योजना (प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना), विपणन और प्रसंसाधन पर भी विचार किया गया है तथा कुछ अन्य क्षेत्रों की भी महत्व दिया गया है, लेकिन आश्चर्यजनक रूप में एक बात का

उल्लेख नहीं किया गया वह है 'कृषि कार्यक्रम में गैर बजट' की भूमिका का उल्लेख नहीं किया गया। कुछ प्रमुख बातें हैं जैसे दीर्घकालिक ऋण, गोदाम, प्रसंसाधन क्षेत्र और इसकी पृष्टभूमि में आप नाबार्ड के बारे में पुनः सोच रहे हैं, इसकी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका के लिऐ। इस प्रकार ऋण देना और ग्रामीण आधारभूत सुविधाऐं देने की व्यवस्था, यथाः ग्रामीण आधारभूत विकास निधि तैयार करना, जिसका संचालन नाबार्ड द्वारा किया जाऐगा। इस प्रकार इस बजट में भी पिछले 10 वर्षों के बजटों की तरह ही कार्य किया गया है, किंतु पिछले 10 वर्षों में इस क्षेत्र में अधिक नहीं हो पाया है। बैंकों द्वारा सीधे ऋण देना यही प्रमुख संसाधन है जहां वित्तीय क्षेत्र कृषि क्षेत्र को लाभ दे सकता है, किंतु अब प्रतीत होता है कि नाबार्ड को बडी भूमिका निभाने के लिऐ कहा गया है।

किंतु, इन सभी प्रयासों को वास्तव में अपना प्रभाव दिखाना होगा और संबंधित लोगों तक लाभ पहुंचाने के लिऐ उन्हें उनकी आवश्यकताओं पर ध्यान देना होगा क्योंकि यही कृषि क्षेत्र का रास्ता है और कृषि में जुटे हुऐ किसान उसी प्रकार से प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, इन उपायों से ऐसा बड़ा परिवर्तन देखने को तो नहीं मिलेगा जिनसे वर्तमान पद्धतियों में उल्लेखनीय सुधार नजर आऐ। इस दिशा में कुछ क्षेत्रों को चुना गया है जैसे ग्रामीण विधुतीकरण, वास्तविक प्रभावित लोगों तक लाभ पहुंचाना, इस क्षेत्र में गुजरात ने पहले की कदम बढ़ा दिऐ हैं हालांकि इसका लाभ कुछ लोगों तक ही पहुंचा है।

कई क्षेत्रों में सुधार करने के प्रयास किऐ गऐ हैं किंतु आमतौर पर यही राय है कि उल्लेखनीय कुछ नहीं हुआ और इसमें परिवर्तन लाने के लिऐ हमें बड़े पैमाने पर कुछ खास करने की आवश्यकता है। क्या सरकार ऐसा करेगी क्योंकि बजट में इसका उल्लेख नहीं है ? मेरा मानना है कि कृषि क्षेत्र में अधिक परिवर्तन नहीं हो सकता क्योंकि इसकी प्रकृति ही बहुत धीमी किस्म की है, यह क्षेत्र प्राकृतिक परिस्थितियों पर अधिक निर्भर है। भारत में कृषि क्षेत्र दो या तीन अति महत्वपूर्ण उपायों से तेजी से प्रगति कर सकता है लेकिन इसके लिऐ प्रत्येक सरकार को उन परिवर्तनों पर ध्यान देने की जिम्मेवारी होनी चाहिऐ। सबसे पहले वह क्षेत्र जिस पर न तो किसी ने ध्यान दिया न ही वार्तालाप किया कि पिछले 15 वर्षों में 9 वर्ष, भारतीय इतिहास में रिकॉर्ड पिछले 150 वर्षों के तापमान से अधिक गर्म वर्ष रहे। हम तापमान बढ़ने के बारे में बात कर रहे हैं और उसका विपरित प्रभाव भी देखने को मिला है। हमें इसका कैसे मुकाबला करना है, यह अलग विषय है किंतु इस क्षेत्र में कुछ भी न करना हमारे लिऐ कठिनाईयां उत्पन्न करेगा।

दूसरा, इस प्रक्रिया को मौसम विभाग अति महत्वपूर्ण नहीं मान रहा है। मेरा मानना है कि वर्ष 1998 में यह आंकडों की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। यह वही समय था जब हमने तापमान के बारे में विचार करना आरंभ किया और यह अति महत्वपूर्ण भी बन गया। आगे की बात करें तो कि हम कृषि क्षेत्र में कहां हैं और कृषि की आवश्यकताओं को कैसे दिमाग में भी रखने की आवश्यकता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जो एकदम परिवर्तित नहीं होगा किंतु लंबे समय के बाद हम इसमें कुछ कर सकते हैं, क्योंकि विश्व की परिस्थितियों को देखते हुऐ इसकी कमियों को दूर करना सरल नहीं है। अतः हमें अपने कृषि क्षेत्र को काफी सचेत नजरों से स्पष्ट रूप से देखना होगा। वर्ष 1990 की समाप्ति से इस पर कार्य चल रहा है।

दूसरी बड़ी बात निम्न प्रकार से हुई है। भारत के रिकॉर्डिड इतिहास में पहली बार कृषि क्षेत्र में लगे लोगों की संख्या में कमी आई है। यह कमी कम नहीं है। यदि राष्ट्रीय सर्वेक्षण आंकडों पर विश्वास किया जाऐ तो यह 9 और 14 प्रतिशत के बीच कम हुई है। इस प्रकार वर्ष 2004 और 2011 में, 7 वर्षों के कम समय में इतनी बड़ी संख्या कम होना महत्वपूर्ण है। अब जब कृषि क्षेत्र में कार्यबल लगभग 10 प्रतिशत के दर से कम हो रहा है तो ऐसा महसूस होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में विविधिकरण लाना, कम उत्पादन वाले क्षेत्रों से निकलना आदि सभी

एक दूसरे के भाग हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा कृषि क्षेत्र को देखना है कि कृषि क्षेत्र में ही लोगों की संख्या कम हो रही है और हमें लागत आदि भी बढ़ानी होगी।

पिछले 7 वर्षों में आप स्पष्ट रूप से एक प्रभाव देख रहे होंगे की ग्रामीण मजदूरी, कृषि मजदूरी में 6–7 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई है, वास्तव में इसके लिऐ मुद्रास्फीति का भी महत्व रहा है और इसका कृषि लागत पर भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। अब हमें लगने लगा है कि कृषि क्षेत्र में लागत की इतनी महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है जहां पर अधिकतम श्रमिक होते हैं। इस प्रकार हमें वास्तविक रूप से यह देखने की आवश्यकता है कि हम श्रमिकों को किस संदर्भ में देखते हैं कि श्रमिक अधिक हैं या श्रमिकों की कमी हो रही है, जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है तथा यह सब परिवर्तन हाल ही में हुऐ हैं और जलवायु परिवर्तन से भी प्रभाव पड़ रहा है।

तीसरा, प्रमुख पहलू यह है कि उपरोक्त सभी कुछ होने के पश्चात भी कृषि क्षेत्र में बेहतर कार्य हुऐ हैं। वर्ष 2009–10 से वर्ष 2013–14 की कृषि सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर का औसत 4.1–4.2 प्रतिशत तक गया है, जो वर्ष 2004–05 से 2008–09 की पांच वर्ष की अवधि में औसत 3.1 प्रतिशत वृद्धि दर थी, यह कार्यकाल यूपीऐ–1 सरकार का था। एनडीऐ सरकार के वित्तीय वर्ष 1999–2000 से वित्तीय वर्ष 2003–04 तक 5 वर्ष की अवधि के दौरान वृद्धि दर 2.2 प्रतिशत थी। यदि हम इसमें से अधिक वृद्धि दर देखें तो वह लगभग 2.7 प्रतिशत थी।

उपरोक्त से हम देख सकते हैं प्रत्येक 10 वर्ष की अवधि में कम से कम तीन वर्ष ऐसे हैं जब कृषि सकल घरेलू उत्पाद की दर नीचे गई थी। इसी प्रकार प्रत्येक 10 वर्षों की अवधि में कम से कम तीन वर्ष थे, लेकिन लगभग 4 वर्षों में औसत अधिक था। सच्चाई यह है कि पिछले 10 वर्षों में एक वर्ष भी ऐसा नहीं है जब कृषि सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर नकारात्मक रही हो, यथाः पिछले वर्ष की तुलना में कृषि सकल घरेलू उत्पाद की दर नीचे आई हो।

कई बार देखा गया है कि लक्ष्य बढ़ाने की मांग की जाती है किंतु ऐसा नहीं हो पाता चाहे यह 10वीं या 11वीं पंच वर्षीय योजना हो, लेकिन प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने का लक्ष्य नहीं रखा जा सका और यह हमें पिछले 2 वर्षों तक देखने को मिलता रहा। पिछले 2 वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर निर्धारित लक्ष्य से कम रही और इसमें लक्ष्य से अधिक कृषि वृद्धि दर देखी गई। इससे पता चलता है कि यूपिऐ की यह वास्तविक असफलता थी, जिस कारण इसे चुनावों में सब कुछ गंवाना पड़ा जबकि वह बहुत कुछ कर सकते थे लेकिन खाद्य मुद्रा स्फीति बहुत अधिक हो चुकी थी। मुद्रा स्फीति बढ़ना जारी है जबकि वास्तविकता यह है कि हमारा कृषि उत्पादन तेजी से बढ़ रहा है तथा यह उन वर्षों में भी बढ़ता रहा जब अर्थव्यवस्था में मांग की वृद्धि दर कम हो रही थी।

संपादकीय

चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में अलाउद्दीन खिलजी को अपनी विशाल सेना और प्रशासन को संभालने की चुनौती थी क्योंकि सीमित साधन होने के बाद उनका वेतन बढ़ाने का अवसर नहीं था, जिसके लिऐ उन्हें कठिनाई हो रही थी। उनके पास एक ही विकल्प था कि अनिवार्य वस्तुओं और अन्य वस्तुओं के मूल्य कम कर दें। अर्थशास्त्रियों ने इसे आज खाद्य मुद्रास्फीति का नाम दे दिया है। खिलजी ने मूल्यों को नियंत्रण करके और आपूर्ति के लिऐ उपयुक्त और नियमित उपाय करके ऐसा किया। यह प्रावधान कुछ वर्षों के लिऐ तब तक ही करना पड़ा जब तक स्थितियां सामान्य नहीं हो गई।

इसी प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिऐ जब हम बाजार पर प्रतिबंध नहीं लगा पाते हैं तो हमें खिलजी से सबक सिखना चाहिऐ की वह न केवल कठोर प्रशासक बल्कि एक अच्छे सुधारक भी थे। यह भी सच्चाई है कि सरकार द्वारा अनाज खरीदने, गोदाम में रखने और लाने ले जाने (भारतीय खाद्य निगम) का विचार भी खिलजी का ही था जिन्होंने अपने भंडार अनाजों से भरवा लिऐ थे ताकि अनाज की बिक्री उस समय मंडियों में की जाऐ जब अनाज की कमी आऐ और लाभ अर्जित किया जा सके।

खिलजी ने महसूस किया था कि समृद्धता बढ़ाने के लिऐ मजदूरी बढ़ाना उपाय नहीं है, बल्कि वस्तुओं के मूल्य कम कर दिऐ जाऐं ताकि अधिक से अधिक लोग उन्हें अधिक मात्रा में खरीद सकें। यूपीऐ–2 ने बढ़ती हुई मुद्रास्फीति या खाद्य मुद्रास्फीति को कम करने के लिऐ मजदूरी बढ़ाने की गलती की थी। यह उस पर कितनी भारी पड़ी यह हाल ही में हुऐ चुनावों से देखा जा सकता है। यह सब बातें वहीं समाप्त नहीं हुई हैं, समय बदल चुका है किंतु समस्याऐं वहीं पर हैं। वही समस्या जो पिछले पांच वर्षों से पूरे भारत के लिऐ संकट थी अब यही संकट माननीय प्रधानमंत्री के लिऐ है। इस विषय पर मैं कहना चाहूँगा कि 600 वर्ष पुरानी प्रक्रिया या विधि का पालन करने के स्थान पर मेरा सुझाव है कि भारतीय खाद्य निगम को तीन भागों में बांट देना चाहिऐ। एक विभाग को अनाज खरीदने और लाने–लेजाने का कार्य, दूसरे को भंडारित करने और तीसरे विभाग को वितरण करने का कार्य सौंपा जाऐ। इससे न केवल अनाज की बर्बादी कम होगी बल्कि जिम्मेवारी भी तय होगी और अनाज की सुपुर्दगी भी शीघ्र/कारगर ढंग से होगी।

यदि अर्थशास्त्रियों ने इतिहास पढ़ा होता तो उन्हें बहुत कुछ सीखने को मिलता और वे वर्ष दर वर्ष, दशक दर दशक, शताब्दी के बाद शताब्दियों तक उन्हीं समस्याओं का समाधान करने के लिऐ एक ही प्रकार की गलतियाँ नहीं करते।

सरकार केवल कुछ फसलों के लिऐ ही न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाती है और यह 4 प्रतिशत से अधिक नहीं होता जो कि मुद्रा स्फीति की दर या बढ़ने वाले उपभोक्ता मूल्य सुचकांक (सीपीआई) की दर से काफी कम है। भारत में किसानों को दिया जाने वाला समर्थन मूल्य जैसे चावल और गेहूं के लिऐ दिया जाता है, यह पूरे विश्व में मिलने वाले समर्थन मूल्य से कम है, वास्तव में विदेशों में दिऐ जाने वाले समर्थन मूल्य से प्रायः यह एक तिहाई से भी कम होता है।